International Journal of Research in Social Sciences
Vol.6 Issue 2, February 2016
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

वैदिकशिक्षा एवं आश्रमव्यवस्था में कुलपुरोहित तथा आचार्य का महत्त्व

डा. छोटीबाई मीणा
सहायकाचार्यः,
राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम् (मा.वि)
नईदिल्ली

प्रस्तावना- मनुष्य एक विचारशील सामाजिक प्राणी है। मनुष्य की बौद्धिकशक्ति ही उसे अन्य प्राणियों से विशिष्ट बनाती है। इसकी समस्या समाधान की , दुःख निवृत्ति की , सत्य की जानने की जिज्ञासा सदा से रही है। इसी जिज्ञासा प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप आज विज्ञान , वाणिज्य शिक्षादि क्षेत्रें में अकल्पित विस्तार एवं प्रगति हुई है। विज्ञान के विस्फोट से संगणक अन्तरजाल जैसे अद्भुत वैज्ञानिक उपकरणों से यह जगत् एक घरौंदा बन गया है। इन वैज्ञानिक साधनों से सभी क्षेत्रें में क्रान्तिकारी परिवर्तन होने से उन सभी क्षेत्रें का कायाकल्प हो गया है। विज्ञान के क्षेत्र निरन्तर अनुसन्धान एवं विकास से नित्यजीवन में सुविधा के साधनों का अम्बार लगा है। परन्तु खेद की बात यह है कि विकास के साथ मनुष्य अपने विनाश की भी तैयारी कर रहा है। प्रत्येक क्षेत्र में अनेकानेक विकट एवं भयावह समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं। इन्हीं समस्याओं के परिणामस्वरूप मनुष्य अशान्त , व्याकुल, आतंकित, दुःखी एवं शंकित है। जिस मनुष्य को अत्यन्त प्रबुद्ध हम समझते हैं प्रगतिशील समझते हैं वह आन्तरिक दृष्टि से खोखला सिद्ध हो रहा है मनुष्य की यह विडम्बना है कि वह प्रगतिशील एवं प्रबुद्ध होने के बावजूद भी दुःखी एवं अशान्त है। अतः इन समस्याओं के सही स्वरूप को जानकर उसके स्थायी एवं शाश्वत समाधान हेतु प्रयत्न होना चाहिए। प्रस्तुत पत्र में मूलसमस्या उसका स्वरूप उसके निवारण हेतु वैदिकशिक्षा आश्रमव्यवस्था आचार्य, विद्या, शिक्षणपद्धति एवं इनकी उपादेयता पर प्रकाश डाला गया है।

1- समस्या - समाधान प्रक्रिया --

आज जगत् के प्रत्येक क्षेत्र में अनेकानेक समस्याएँ अपने विकरालरूप में प्रकट हो रही है। शैक्षिक क्षेत्र में भी अनेक समस्याएँ हैं। समस्याओं का सही एवं स्थायी निदान न होने पर परिणामस्वरूप दुःख , पीड़ा, कलह, अराजकता, हिंसा इत्यादि अनेक उपद्रव शुरू होते हैं। समस्या यदि रहेगी तो दुःख अथवा पीड़ा अवश्य होगी। यह भी सत्य है कि, समस्या से दुःखी होकर, समस्या को या अपने भाग्य को कोसने से समस्या दूर नहीं होगी संसार में कोई भी ऐसी समस्या नहीं है। जिसका कि समाधान नहीं हो सकता। परन्तु व्यक्ति यदि आरम्भ में ही यह मान बैंठे कि, समस्या का समाधान हो ही नहीं सकता तब तो सरल से सरल समस्या जटिलतम बन जाती है। समस्याएँ जितनी प्राचीन हैं मनुष्य की समाधान करने की प्रवृत्ति भी उतनी ही पुरानी है , समस्याएँ हैं उनकी परिणति दुःख है और कोई भी मनुष्य दुःख, पीड़ा को नहीं चाहता।

समस्याओं का वर्गीकरण एवं स्वरूप निर्धारण --

इस जगत की समस्याएँ अनेक हैं , परन्तु इन्हें अज्ञान , अन्याय, अभाव और अकर्मण्यता इन चार मौलिक समस्याओं में समाहित किया जा सकता है। इन चार मौलिक समस्याओं को एक मूल महासमस्या में समाविष्ट किया जा सकता है। वह मूल महासमस्या अज्ञान है। अज्ञान से ही अन्याय , अभाव, अकर्मण्यता आदि अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। समस्याएँ असंख्य होने से प्रत्येक का समाधान हम कर पाते इससे पहले और अनेक समस्याएँ उत्पन्न होगीं। अतः ऋषियों ने इन समस्याओं के मूल को खोजा कि ये सारी समस्याएँ अज्ञान से, अन्याय

International Journal of Research in Social Sciences
Vol.6 Issue 2, February 2016
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

से, अभाव से , अकर्मण्यता से उत्प न्न होती है। अन्याय , अभाव, अकर्मण्यता की जननी अज्ञान है। अतः महासमस्या या मूलसमस्या अज्ञान है।

इस जगत की असंख्य समस्याओं की मूलसमस्या या बीजसमस्या अज्ञान है। यथा - किसी महान् वटवृक्ष का केन्द्रबिन्दु या आधार उसका मूल होता है। उस मूल का उद्गम बीज होता है। एक सूक्ष्म वटबीज में शाखोपशाखा से युक्त अति विशाल वटवृक्ष की संभावना है। केवल उपयुक्त वातावरण एवं जलादि अपेक्षित आवश्यकताएं पूर्ण होने पर एक महान वटवृक्ष का आविर्भाव होता है। निश्चय ही वटवृक्ष की पूर्वावस्था सूक्ष्म बीजमात्र है। वटवृक्ष उस बीज की उत्तरावस्था है। जैसे शाखोपशाखायुक्त अति विशाल वटवृक्ष प्रकट रूप से वृक्ष है तो अप्रकटित रूप से बीज है इसी भान्ति संसार की अधिकांश समस्याएँ प्रकट एवं विशाल रूप को धारणकर नाना रूपों में असंख्य, दिख रही है परन्तु वटवृक्ष की शाखाएं अनेक होने पर भी मूल एक एवं उस मूल का भी कारण एक सूक्ष्म बीज है उसी प्रकार से अनेकानेक समस्याएँ मूल रूप में एक अज्ञान रूपी मूलसमस्या के अनेक रूप हैं।

इस जगत में प्राकृतिक नियम अद्भुत व्यवस्था में व्यवस्थित हैं। मनुष्येतर सभी प्राणी अपने प्रकृति प्रदत्त स्वाभाविक प्रवृत्तियों में मर्यादित एवं नियन्त्रित हैं। अतः इन प्राणियों के कारण या प्राकृतिक नियमों से इस संसार में समस्याएँ उत्पन्न नहीं होते हैं। अपितु पारिशेष न्याय से , मनुष्य की कृति से ही समस्याएँ उत्पन्न होती हैं एवं इससे मनुष्य पर समाज पर एवं इस प्राकृतिक जगत् पर प्रभाव पड़ता है। मनुष्य की कायिक वाचिक एवं मानसिक क्रियाओं का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव अन्यों पर तथा स्वयं पर भी पड़ता है। यदि क्रिया सकारात्मक एवं सृजनात्मक हे तो समस्या उत्पन्न नहीं होगी परन्तु यदि क्रिया विधवंसात्मक , हानिकारक होगी तो समस्या अवश्य उत्पन्न होगी क्रिया या चेष्टा का प्रकट परिणाम संसार की समस्या तथा इसी क्रिया का सूक्ष्म या मूल रूप मानसिक विचार है। ये मानसिक विचार किसी को दिखते नहीं हैं जब क्रिया हो जाती है तो परिणाम प्रकट हो जाता है। तब परिणाम के आधार पर पूर्वकारण या मानसिक विचार का निर्धारण किया जाता है। जैसे कोई व्यक्ति परमाणु अ स्त्रों का किसी देश पर प्रयोग करता है उससे दुष्परिणाम समान आते हैं तब हम विचार करते हैं कि , व्यक्ति के कायिक क्रिया से पूर्व मानसिक सोच विचार पूर्व में हुआ है केवल निश्चय किये हुए का अपने विचारों का बाद में कार्यरूप परिणति हुई है। उस स्थूल कार्य रूप का मूल उसका विचार मानसिक निश्चय है। इस हानिकारक विनाशक हिंसात्मक मानसिकनिश्चय या विचारों का मूल वासना , कुसंस्कार हैं। इस वासना या कुसंस्कार का मूल अविद्या अथवा अज्ञान है। अविद्या अज्ञान संसार की सारी समस्याओं की जननी है, केन्द्र है, उद्गम स्थान है।

इस प्रकार हर समस्या का परिणाम दुःख एवं समस्या का मूल कारण अविद्या है। ऐसा निष्कर्ष निकलता है । आयुर्वेद में रोग निदान एवं आरोग्य प्राप्ति हेतु चार सोपान बताये गये हैं। तद्यथा - रोग , रोगहेतु, आरोग्य , भैषज्यम[1]जैसे निपुण वैद्य आरम्भ में रोग के लक्षणों के आधार पर रोग निश्चय करता है। तदुपरान्त रोग के कारण को खोजता है या निश्चय करता है। इसके पश्चात् सम्पूर्ण आरोग्य प्राप्ति के विषय में विचार करता है , अन्त में आरोग्य प्राप्ति हेतु भैषज्य अथवा औषधि का निर्धारण कर रोग निदान करता है।

इसी भाँति जगत् की समस्याओं के स्वरूप को ठीक ठाक जानकर समस्या के मूल या हेतु को जानना चाहिए तत्पश्चात् समस्या समाधान एवं अन्त में समस्या समाधान हेतु उपाय निश्चित करना चाहिए। यथा - वट वृक्ष के छोटे से बीज को सींचकर खाद पानी देकर एक अतिविशाल वट वृक्ष बना सकते हैं। ऐसी अवस्था में इसके निर्मूलन हेतु बहुत परिश्रम करना पड़ता है इसके विपरीत यदि वृक्ष बीजावस्था में है तो उसे वृक्ष में परिणत होने से पूर्व ही बीजावस्था में ही नष्ट करने से सुगमता होगी। अतः अज्ञान रूपी समस्या दुःख के निवारण हेतु छान्दोयोपनिषद् में ऋषि ने कहा " **मूलमन्विच्छ**[2] मूल को खोजो मूल में ही समाधान है। अज्ञान अथवा अविद्या का कारण संस्कार दोष अथवा इन्द्रिय दोष है। गलत संस्कारों से अज्ञान या अविद्या उत्पन्न होती है। इन्द्रियों में भी दोष होने से यथार्थ ज्ञान नहीं होता अथवा अज्ञान उत्पन्न होता है। इस अज्ञान रूपी मूल समस्या के परिहार के लिए वैदिक ऋषियों ने

International Journal of Research in Social Sciences
Vol.6 Issue 2, February 2016
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

आश्रम व्यवस्था एवं संस्कार प्रणाली को आविष्कृत किया। आश्रम चार हैं - ब्रह्मचर्याश्रम , गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम, संन्यासाश्रम एवं संस्कार सोलह हैं। व्यक्ति का निर्माण गर्भाधान से होता है। अतः गर्भाधान से ही उत्तम सुसंस्कृतव्यक्ति के निर्माण हेतु संस्कार किये जाते हैं।

1- **गर्भाधान संस्कार** 2- **पुंसवन संस्कार** 3-**सीमान्तोन्नयन संस्कार**

ये तीनों संस्कार गर्भकाल में होते हैं।

4- **जातकर्म संस्कार** 5- **नामकरण संस्कार** 6- **निष्क्रमण संस्कार**

7- **अन्नप्राशन संस्कार** 8- **चूड़ाकर्म संस्कार** 9- **कर्णवेध संस्कार**

ये छः संस्कार जन्म के पश्चात् **3** वर्ष पर्यन्त के काल में होते हैं। इसी काल में शिशु का भावी जीवन का आधार बनता है।

10- **उपनयन संस्कार** - यह विद्यारम्भ का संस्कार है। यह संस्कार बालक के पाँचवें/आठवें वर्ष में होता है। गुरु या आचार्य उपनयन संस्कार कर गायत्री मन्त्र का उपदेश करता है विद्याध्ययन काल में ब्रह्मचर्य एवं तपश्चरण के लिए उद्बोधन करता है।

11- **वेदारम्भ संस्कार** - वेद अर्थात् ज्ञान। ज्ञान राशि के रूप में चार वेद हैं। ऋग्वेद , यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद। उपनयन के अनन्तर बालक को वेदा-वेदांग अधययन हेतु वेदारम्भ संस्कार किया जाता है।

12- **समावर्तन संस्कार** - कम से कम पच्चीस वर्ष की आयु तक गुरुकुल में श्रद्धा, निष्ठा, तपस्या दीक्षा से ब्रह्मचर्य पूर्वक वेदाध्ययन लेकर एवं नाना विद्यायें शिल्प कला में पारंगत होने के उपरान्त तेजस्वी ज्ञानसम्पन्न तपः पूत ब्रह्मचारी अपने निज घर लौटने के समय समावर्तन संस्कार किया जाता है।

13- **विवाह संस्कार** - विद्या कला एवं व्यवहार में कुशल होने के उपरान्त अपने गुण कर्म स्वभाव के अनुरूप कन्या का अथवा कन्या वर का वरण कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते हैं। यह गृहस्थाश्रम , वानप्रस्थाश्रम एवं संन्यासाश्रम का आधार है। समाज एवं राष्ट्र का केन्द्र गृहस्थाश्रम है। इसी आश्रम में व्यक्ति का गर्भाधान से उपनयन संस्कार तक उत्तम निर्माण होता है। गृहस्थाश्रम के धार्मिक सांस्कृतिक कृत्य करने हेतु कुलपुरोहित होता है जो इन सभी संस्कारों को करता है। जिससे परिवार का सामाजिक , धार्मिक, सांस्कृतिक एवं नैतिकविकास होता है मानवीय मूल्यों का संवर्धन होता है, कुलपुरोहित परिवार के सदस्यों को धर्म, रीति, नीति, कुलाचार, सदाचार की शिक्षा देता है तो कुलगुरु या आचार्य गुरुकुल में गृहस्थ के बच्चों को शिक्षा दीक्षा , नानाविद्या, कला , आचार, व्यवहार, कर्तव्य आदि का बोध कराता है। इस भान्ति कुलपुरोहित एवं कुलगुरु समाज के गृहस्थके एकैक व्यक्ति का संस्कारों से संयम एवं सदाचार से आदर्श जीवन से सुसंस्कृतसमाज एवं समृद्धराष्ट्र का निर्माण करते है। इस समाजनिर्माण एव राष्ट्रनिर्माण में माता पिता एवं आचार्यगण - कुलपुरोहित का महान् योगदान होता है। इस प्रकार की व्यवस्था में व्यक्ति के पतित होने की संभावना नहीं के बराबर होती है।

14- **वानप्रस्थ संस्कार** - गृहस्थाश्रम में बेटे का बेटा अर्थात् पोता होने पर व्यक्ति को गृह त्याग कर वानप्रस्थाश्रम में प्रविष्ट होना चाहिए। एतदर्थ वानप्रस्थ संस्कार किया जाता है।

15- **संन्यास संस्कार** - जिस दिन वैराग्य हो जाए विवेक ज्ञान प्राप्त हो जाए उसी दिन संन्यास दीक्षा लेनी चाहिए एतदर्थ यह संस्कार किया जाता है।

16- **अन्त्येष्टि संस्कार / अन्तिमसंस्कार** - शरीर से प्राण चले जाने पर या निष्प्राण शरीर पर यह संस्कार किया जाता है मृत शरीर को चिता पर जला दिया जाता है।

इन संस्कारों से व्यक्ति का आन्तरिक एवं बाह्य व्यक्तित्व का निर्माण होता है। इन षोडश संस्कारों में एवं आश्रमव्यवस्था में व्यक्ति अधिकांश समय अरण्य में ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, सन्यास में ज्ञान में तप, तितिक्षा में प्रकृति परब्रह्म की गोद में ही बिताता है।

International Journal of Research in Social Sciences
Vol.6 Issue 2, February 2016
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

इस प्रकार के ज्ञानपूर्ण सदाचार पूर्ण अन्तःप्रज्ञपूर्ण योगमय जीवन से व्यक्ति की आन्तरिक सुप्तशक्तियाँ जागृत होती हैं। व्यक्ति अन्तःतृप्त होने से बाहरी प्रलोभन आकर्षण एवं भय उसे प्रभावित नहीं कर सकते। अन्दर से तृप्त ज्ञानी संस्कारी, सदाचारी व्यक्ति ही ठीक प्रकार से जगत् की समस्या का समाधान कर लोकोपकार कर सकता है। यथा - वैदिक ऋषि एवं आचार्य - बुद्ध एवं बौद्ध साधक। इस जगत में आवश्यकताएँ (अनिवार्य) सभी की पूर्ण हो सकती है परन्तु सभी की आकांक्षाएँ पूर्ण नहीं हो सकती हैं। क्योंकि आकांक्षाओं की कोई सीमा नहीं है हर क्षण बदलती एवं बढती है। मनुष्य का जीवन अन्तःतृप्ति एवं सीमित आवश्यकताओं से पूर्ण हो सकता है कृतार्थ होता है। आकांक्षाओं से कभी तृप्ति नहीं होती और न तो अभिलाषाओं की परिसमाप्ति। अतः अपने एवं जगत् के कल्याण के लिए सभी को अन्तर्मुख होकर अन्तःप्रज्ञ में स्थित होकर विवेक से कार्य करना चाहिए तभी जगत् की समस्याका स्थायी समाधान होगा यहाँ जगत् स्वर्ग एवं मनोहारी होगा अन्यथा नहीं।

मनुष्य कार्य प्रायः संस्कार वशात् करता है संस्कार आदत या स्वभाव के रूप में परिणत होते हैं अतः आदतें यान्त्रिक होती हैं। इसलिए विवेक पर भारी पड़ जाती हैं। कई बार बुद्धिमान होने के बावजूद की आदतवश अज्ञानयुक्त कार्य करता है यही उसका प्रमाद है। इस अज्ञान से मुक्ति के लिए विद्या की प्राप्ति आवश्यक है। यहाँ ज्ञान या विद्या जानकारी मात्र नहीं है अपितु ज्ञान के अनुरूप अपना परिवर्तन अथवा व्यवहार विवेकानुसार या शास्त्रनुसार होना चाहिए। वैसे जानकारी स्मृति के रूप में रह सकती है परन्तु स्मृति मात्र होने से कोई ज्ञानवान् या प्रज्ञापुरुष नहीं कहला सकता। अत: सत्यज्ञान एवं सदाचार हेतु समित्पाणि ब्रह्मचारी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य के समीप विद्याध्ययन हेतु उपस्थित होता है[3]।

वैदिकशिक्षा में शिक्षा के चार घटक हैं। **''आचार्य: पूर्वरूपम् अन्तेवास्युत्तर रूपं विद्या सन्धि प्रवचनं सन्धानम् इत्यधिविद्यम्।''**[5] आचार्य, अन्तेवासी, विद्या एवं प्रवचन हैं। विद्याधिगम के लिए आचार्य पूर्वरूप है तो अन्तेवासी अन्तररूप है अर्थात् एक छोर पर गुरु अपर छोर पर अन्तेवासी इन दोनों का संयोग विद्या या ज्ञान के निमित्त हुआ है। प्रवचन या उपदेश के द्वारा आचार्य अपना ज्ञान छात्र को प्रदान करता है ।

आचार्य -

आचार्य कौन हैं ? **आचारं ग्राहयति, आचिनोति अर्थम् आचिनोति बुद्धिमिति वा** [4] इस नि रुक्त निर्वचन के अनुसार आचार्य वह है जो स्वयं सदाचारी होकर अपने अन्तेवासियों को सदाचार ग्रहण कराता है। शिक्षा की परिणति व्यवहार या आचार में देखी जाती है यदि व्यवहार में परिवर्तन हुए सदाचार की ओर उन्मुख है तो ज्ञान फलित हुआ समझना चाहिए अन्यथा ज्ञान स्मृति में सञ्चित मात्र है ऐसा कहना पड़ेगा। आचार्य को ज्ञान, तपस्वी, व्रती, कहा गया है। आचार्य किसी विद्या कला में पारंगत हो बहुश्रत हो त्याग पूर्ण जीवन जीने वाला तपस्वी हो एवं कठोर व्रत नियम अनुशासन का पालन करने वाला हो। ऐसा व्रती आचार्य अनुशासन , आचार सिखा सकता है। अन्तेवासी उसके जीवन से उसे सीखते हैं।

आचार्य का द्वितीय गुण है - अर्थ का बोध कराने वाला हो - सभी विषयों का ज्ञान शब्दगत होता है। लोक में जो भी वस्तु द्रव्य, पदार्थ विषय हैं उनका ज्ञान शब्दों से करावे जिससे अन्तेवासी उस-उस ज्ञान में उस-उस अर्थ में निपुण हो अर्थात् नाना विद्याएँ आचार्य अन्तेवासी को सिखाएँ।

आचार्य का तीसरा गुण है - बुद्धि को परिष्कृत विकसित करने वाला हो - अन्तेवासी का मानसिक , अध्यात्मिक एवं बौद्धिक शक्तियों का विकास करें। इस भाँति एक आचार्य अन्तेवासी का आचार शुद्ध करता है , व्यावहारिक एवं सामाजिक बनाता है। कर्त्तव्य की ओर प्रवृत्त करता है, अकर्त्तव्य से निवृत्त करता है।

International Journal of Research in Social Sciences
Vol.6 Issue 2, February 2016
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

आचार्य जितनी विद्याएँ जानता है उन सभी का ज्ञान देकर नाना विद्या एवं कला में निपुण बनाता है। वह छात्र की मानसिक, आत्मिक, बौद्धिक विकास करता है। इस प्रकार एक कुशल आचार्य छात्र के सर्वा ङ्गीण विकास के लिए तत्पर रहता है। उसी कार्य में अपने को समर्पित करता हैं।

अन्तेवासी - अर्थात् छात्र। गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली में ब्रह्मचर्याश्रम में छात्र **25** वर्ष तक या उससे अधिक आयु तक गुरु के सान्निध्य में विद्याध्ययन ब्रह्मचर्य का सेवन करते हुए करता है। ब्रह्मचर्य का तात्पर्य , ब्रह्मणि चरति इति ब्रह्मचारी तस्य कर्म भावो वा ब्रह्मचर्य अन्तेवासी ब्रह्म अर्थात् वेद में अथवा परमेश्वर में विचरण करता है उसमें तन्मय होता है और यही उसका व्रत है। इसके लिए इन्द्रियनिग्रह आवश्यक है। इन्द्रियों को एवं मन को विषय भोग से निवृत कर वेद ज्ञान में अथवा परमात्म तत्त्व में लगाना आवश्यक है। इसलिए ब्रह्मचारी का जीवन कठोर तितिक्षा तत्परता पूर्ण अनुशासन एवं व्रत पूर्ण होता है। तब शारीरिक , मानसिक बौद्धिक शक्तियों का उदा त्तीकरण हो सृजन एवं रचनात्मक कार्यों की ओर प्रवृत होती है। ब्रह्मचर्य आगम में संचित शक्तियों से विद्याओं से तप से व्यक्ति अपने भावी जीवन में असाधारण कार्य करता है।

विद्या- शास्त्रें में विद्या दो प्रकार की है - (**द्वे विद्ये वेदितव्ये परा च अपरा च**[6])

1- परा **2-** अपरा

परा आध्यात्मविद्या अथवा आत्मज्ञान अपरा वेदशास्त्र विज्ञान वाणिज्यादि लौकिक विद्या।

मनुष्य को ऐहिक उन्नति के लिए अपरा विद्या जाननी चाहिए एवं पारलौकिक उन्नति या आत्मिक शान्ति के लिए सत्य एवं तत्त्व की प्राप्ति के लिए परा या अध्यात्मविद्या जाननी चाहिए। परा विद्या से निश्रेयस की प्राप्ति एवं अपरा विद्या से अभ्युदय की प्राप्ति होती है। मानव जीवन की सार्थकता अभ्युदय निश्रेयस की प्राप्ति में ही है।

वर्तमान में अपरा विद्या का ही चरम उत्कर्ष है परा विद्या की ओर ध्यान ही नहीं दिया जा रहा है। परिणाम स्वरूप मानव मानवीय मूल्यों से रहित संवेदनहीन भोगासक्त हो अविवेक से प्रवृत्त हो रहा है। इसी कारण अशान्ति, आतंक अराजकता है। मनुष्य इन दोनों का समन्वय कर के चलने से जीवन की दिशा और दशा ठीक रहती है। गाड़ी केवल एक पहिए पर नहीं चल सकती दोनों पहिये का आधार अपेक्षित है। इसलिए यजुर्वेद में कहा है।

विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयं सह अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया ऽमृतमश्नुते[7] अर्थात् - मनुष्य को विद्या एवं अविद्या (अपरा विद्या) दोनों साथ-साथ जाननी चाहिए क्योंकि अविद्या से लौकिक समस्याओं से मृत्यु से पार जाकर विद्या से अमृतत्त्व की प्राप्ति होती है।

प्रवचन - विद्या की पूर्णता में चौथा घटक प्रवचन है। कुशल आचार्य अपनी विद्या, अपनी कला प्रतिभा प्रवचन के माध्यम से छात्रें में सम्प्रेषित करता है। सम्प्रेषण कला आचार्य गुरु की विशेषता है। सम्प्रेषण या प्रवचन उत्तम होने पर अधिगम होता है। शिक्षण सफल होता है। अतः आचार्य को उत्तम प्रवचनकर्ता या कुशल सम्प्रेषण होना अत्यन्त अनिवार्य है। कुशल गुरु में तीन गुण होने चाहिए -

1- **विषयज्ञान** 2- **सम्प्रेषण कौशल** 3- **वृत्ति के प्रति पूर्ण निष्ठा**

विषय निष्णात गुरु अपनी विद्या को प्रवचन के माध्यम से उत्तमरीति से छात्रें में सम्प्रेषित करता है तब विद्या छात्र को प्राप्त होती है।

विद्या प्राप्ति के अन्य उपाय -

1.**श्रवण**, 2.**मनन**, 3.**निदिध्यासन**, 4.**साक्षात्कार**। प्रथम ज्ञान को ध्यानपूर्वक सुनना है ज्ञान प्राप्ति का यह प्रथम सोपान है। इसके उपरान्त सुने हुए ज्ञान का विषय का मनन करना , चिन्तन करना यह द्वितीय सोपान है। चिन्तन करने के उपरान्त उसको मन में दृढता से धारण करना अथवा वह ज्ञान दृढ रहे अल्पकाल में विस्मृत नहीं यह तृतीय

International Journal of Research in Social Sciences
Vol.6 Issue 2, February 2016
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

सोपान है। अन्त में दृढ धारण किये हुए ज्ञान का तत्त्वतः साक्षात्कार करना या उसकी बोध अनुभूति करना , यह चतुर्थ सोपान है।

व्याकरण के महाभाष्यकार पत ञ्जलि मुनि ने विद्या प्राप्त कर उसे दृढ करने के चार साधन बताये हैं। ''**चतुर्भिः प्रकारैः विद्योपयुक्ता भवति।'' आगम कालेन स्वाध्यायकालेन प्रवचनकालेन व्यवहारकालेन**[8]।

आगमकाल का तात्पर्य जब गुरु से विद्या पढ़ते हैं या गुरु का उपदेश या प्रवचन सुनते हैं इसे आगमकाल कहते है। इस आगमकाल से विद्या प्राप्त होती है , परन्तु वह अस्थिर और कुछ कुछ अस्पष्ट होती है। पुनः स्वाध्याय काल से एकान्त में स्वयं उस विषय का अध्ययन जब करता है तो गुरु द्वारा पढ़ाये विषय / ज्ञान और अधिक स्पष्ट होने लगते हैं। इसी गुरु से पढ़े हुए स्व यं मनन किये हुए ज्ञान को जब अन्य विद्यार्थियों को पढ़ाते हैं तो यह प्रवचनकाल है इस प्रवचन अथवा अध्यापन से और विषय दृढ एवं स्पष्ट होता है। अन्त में इस अर्जित ज्ञान को हम व्यवहारकाल में प्रयोग करने से यह और उपयुक्त फ़लदायी हो जाता है। इस भाँति इन चार साधनों से कोई भी विद्या उपयुक्त दृढ स्थिर स्पष्ट होती है।

उपसंहार- व्यक्ति के सर्वाङ्गीण विकास हेतु वैदिकशिक्षा आचार्य एवं कुलपुरोहित की नितान्त आवश्यकता है जहां परा अपरा दोनो विद्याएं अर्जित कर ऐहिक एवं पारलौकिक फ़ल की प्राप्ति करता है , वस्तुत: वैदिकशिक्षा से तात्पर्य संस्कार शोधन ही सच्ची विद्या प्राप्ति या **शिक्षा** है। मनुष्य प्रत्येक कार्य संस्कारो से अनुप्राणित होकर करता है। संस्कार जब कार्य रूप में उद्बुद्ध होते हैं तब वह वृत्ति बनती वृत्ति से पुनः संस्कार बनता है पुनः उस संस्कार से वृत्ति बनती है। इस प्रकार वृत्ति और संस्कारों का चक्र चलता रहता है। प्रत्येक वृत्ति को अप्रमत होकर विवेकपूर्ण स्थिति में अवलोकन करेंगें तब जो कृत्य होगा वह ज्ञान पूर्ण कृत्य होगा। ऐसा कृत्य सृजनपूर्ण रचनात्मक एवं सुखप्रद होगा और चित्त को शान्ति देने वाला होगा। इसके विपरीत आदतवश यान्त्रिक अविवेक पूर्ण जागृत अवस्था में भी मूर्च्छावस्था के समान कृत्य करना अज्ञान की मूढ़ता को जन्म देता है। इसी अवस्था में किये कृत्य दुःख, विध्वंस, पीड़ा को जन्म देते हैं। विद्या की चरितार्थता विवेक एवं अप्रमाद में है।

सन्दर्भाः

1. योगदर्शनम् , 2.15 व्यासभाष्यम्
2. छान्दोग्यपनिषद् 6.8.4
3. तद् विज्ञानार्थं स गुरूमेवाभिगच्छेत समित्पाणिं श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् - मुण्डक - 1.2.12
4. निरूक्त 1.2.2.
5. तैत्तिरीयोपनिषद्..... शिक्षाध्याय -4
6. मुण्डकोपनिषत् 1.1.4
7. यजुर्वेद 40.14
8. महाभाष्य पस्पशाह्निक

सन्दर्भग्रन्थ

1. यजुर्वेदः , २००५परोपकारिणी सभा, अजमेर
2. विशुद्धमनुस्मृतिः, डा. सुरेन्द्रकुमार, २००५, आर्ष साहित्यप्रकाशन ट्रस्ट, दिल्ली
3. तैत्तिरीयोपनिषद्, हनुमानप्रसाद पोद्दार, १९९५गीताप्रेस, गोरखपुर
4. निरूक्तम्, वैदिकयन्त्रालय, परोपकारिणी सभा, अजमेर

5. कठोपनिषद् , हनुमानप्रसाद पोद्दार, १९९०, गीताप्रेस, गोरखपुर
6. मुण्डकोपनिषद् , हनुमानप्रसाद पोद्दार,१९९२, गीताप्रेस, गोरखपुर
7. अष्टाध्यायी,आचार्य ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, २००२, रामलाल कपूर ट्रस्ट, रेवली
8. केनोपनिषद्, हनुमानप्रसाद पोद्दार, १९९०,गीताप्रेस, गोरखपुर
9. प्रश्नोपनिषद् , हनुमानप्रसाद पोद्दार, १९९१,गीताप्रेस, गोरखपुर
10. योगदर्शनम् , आर्ष साहित्यप्रकाशन ट्रस्ट, दिल्ली
11. वेदान्तदर्शनम् , आचार्य उदयवीरशास्त्री,२००३, गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली
12. भगवद्गीता , हनुमानप्रसाद पोद्दार, १९९०, गीताप्रेस, गोरखपुर
13. छान्दोग्यपनिषद्, हनुमानप्रसाद पोद्दार, १९९२, गीताप्रेस, गोरखपुर
15. बृहदारण्यकोपनिषद्, हनुमानप्रसाद पोद्दार, १९९०, गीताप्रेस, गोरखपुर